आद्या महाशक्ति की सर्वव्यापकता

श्री श्री माँ सर्वाणी

या देवी सर्वभूतेषु मातृरूपेण संस्थिता,
या देवी सर्वभूतेषु साक्षीरूपेण संस्थिता,
या देवी सर्वभूतेषु प्रेमरूपेण संस्थिता,
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ।।

इस विराट ब्रह्माण्ड के मध्य कर्ममार्ग में, ज्ञानमार्ग में एवं भक्तिमार्ग में यथाक्रमानुसार आदिशक्ति माँ हुई मातृरूपा, साक्षीचैतन्यरूपा एवं भक्ति व प्रेमरूपा। साधक के कर्ममार्ग में तथा आत्मकर्म के पथ पर आद्याशक्ति माँ का प्रकाश मातृरूप में प्रकाशित होता है। मातृभाव में महाशक्ति की लीला को साधक जब अहरहः उपलब्ध करता है एवं अन्तर–बाहर में विश्वप्रकृति के मध्य साधक जब मातृस्वरूप का दर्शन बहुरूप में बहुभाव में करता है, तभी उसका यथार्थ विश्वरूप–दर्शन सार्थक होता है। विराट विश्व के मध्य परमब्रह्मरूपी अखण्ड माँ के अस्तित्व को अपने बोधि मध्य अनुभव करते हुए साधक जब विश्वमाता की गोद में छोटा अग्नि–शिशु बन जाता है तब वह होता हैं महाज्ञानी। कर्ममार्ग में विश्वमाता हुई महाकाली स्वरूपिणी। इस आद्याशक्ति महामाया की गोद में निज आसन को विछाकर निर्लिप्त निर्विकार अभय लब्ध साधक शिशु तब महाज्ञानी विश्वद्रष्टा हो जाते हैं। इस अवस्था में विश्वजननी माँ साक्षी–चैतन्य के रूप में उनको सृष्टि रहस्य का अखण्ड ज्ञान प्रदान करती हैं, इसलिए जगज्जननी माँ होती है साक्षी–चैतन्यरूपिणी महासरस्वती स्वरूपा एवं साधक संतान होता है अखण्ड सत्य का साक्षी स्वरूप शिशु भोलानाथ। शिशु भोलानाथ जब सर्वक्षण महाशक्ति माँ के गोद पर अवस्थान करने में सक्षम

होते है, तब माँ उनको अमृत पान कराती हैं। अमृत पान कर साधक भोलेनाथ तब स्वयं को "अमृतस्य पुत्राः" कहकर उपलब्धि करने में सक्षम होते हैं। तत्पश्चात् आद्याशक्ति माता निज अमृत प्रदान कर संतान को पुष्ट करती हैं एवं चिन्मय अमृत आस्वादन से ही संतान की हृदयपद्म की अनन्त चेतना उन्मुक्त होकर पराभक्ति की अनन्त शक्ति साधक के सत्तामध्य जागृत हो उठती है। फिर भक्तिमार्ग के

क्रमानुसार साधकरूपी शिशुभोलेनाथ क्रमशः भक्ति भावों द्वारा प्रभावित सम्बोधि अवस्था में आप्लुत हृदय होकर मातृरूप की महालक्ष्मी स्वरूपा 'विश्वरूपा' का अतिक्रमण कर चिन्मयी 'अरूपा' को बोध करने में सक्षम होते हैं। अरूपा का दर्शन कर शिशु भोलेनाथ हुए भोला–महेश्वर। इस अवस्था में साक्षी चैतन्य प्रदानकारिणी विश्वमाता का शक्तिरूपी अस्तित्व भोला महेश्वर रूपी संतान को "मातंगी" शक्ति के रूप में, श्री राधिका के शाश्वत रूप में, शिवहृदय मध्य "प्रेम" रूपी दिव्य महाभाव को जागृत करा देती हैं। तभी उपलब्धि होती है, "विश्वजननी माँ हुई दिव्यानन्दमयी प्रेम की साक्षात् मूर्ति –अखण्ड अनन्त 'श्री'।"

वह ही परमानन्दमय होता है जो परमानन्दमयी को जानता है–भगवान रामकृष्णदेव ने कहा है –परमानन्दमयी को परिपूर्ण रूप से ज्ञात न होने पर्यन्त साक्षात् परमानन्द–स्वरूप नहीं हुआ जा सकता। 'माँ' परमानन्दमयी अलख–निरंजनरूपी विशुद्ध जड़ के वक्ष पर चैतन्य उद्बुद्ध करती हैं, इसलिए वह हैं सत् के चित् , सत् के बोधि स्वरूपिणी एवं दिव्यभूमि पर सत्–असत् की साम्यरूपिणी।

इस क्षेत्र में "दिव्य सत्" हुए, परमब्रह्मसत्ता की अखण्ड चिदालोक सम्पन्न विशुद्ध जड़ अवस्था, और "दिव्य असत्" हुए चिदालोक के गभीर में अटल अन्धकारमय अवस्था (परब्रह्म–चेतना), जिस अवस्था को ज्ञात करने के लिए साक्षी चैतन्य स्वरूपिणी मातृसत्ता का ही प्रयोजन होता है। यह ही है परमानन्दमय के निकट परमानन्दमयी की महिमा।

कायाधारी जननी जैसे अपने हृदय–संवेग द्वारा प्राण के

आकर्षण से परम स्नेह भाव से स्वेच्छानुसार अपने शिशुसंतान के साथ सर्वदा संयुक्त रहकर संतान को स्नेहवत्सल वक्ष में धारण करते हुए परमप्रीतिभाव से स्तनामृत दानपूर्वक आप्यायित करती हैं, परिपूष्ट करती है, वैसे ही माया-ममतामयी स्नेह-करूणामयी भूमा-आत्मा माँ जगज्जननी जगन्मयी सर्वदा सर्वत्र सम्यकरूप से अपने ममत्वमय परमात्मतनु का विस्तार कर निज संतान के निकट अपने रूप को प्रकट करने के लिए "धरा" रूप में विश्वप्रकृति की साज में सजकर आत्मज संतानगण को निज वक्ष पर धारण कर संतानगणों से सर्वांग संयुक्त रहकर उन सबका योगक्षेम संवहन करती हैं। वे ही आद्याशक्तिरूपी परमानन्दा महामायामयी श्रीश्रीयोगमाया मातृका हैं। इस योगमाया मातृका की लीलारहस्य अतीव अद्भूत एवं आश्चर्यमंडित हैं। इस विषय को सरलभाव में समझने के लिए मातृसाधक श्रीमत् पुलिन ब्रह्मचारी बाबा के रचना से कुछ अंश यहाँ उद्धृत कर रही हूँ।

"एक बार ब्रह्मा, विष्णु व शिवजी विशुद्ध ब्राह्मण का वेश धारणकर गंगा के प्रवाह में स्नान आह्निक कर रहे थे। ऐसे समय देवी पार्वती (दुर्गा) मुर्दे की तरह बहती हुई ब्रह्माजी के निकट उपस्थित होने से ब्रह्माजी ने उनको मुर्दा समझकर दूर हटा दिया। पूनः पार्वती देवी जब बहते हुए विष्णुजी के निकट गयी तो विष्णुजी ने भी उनको अशुचि समझकर दूर हटा दिया। तत्पश्चात् देवी पार्वती शव की तरह बहती हुई शिवजी के निकट जाकर टकरायी तो शिवजी ने उनको देखते ही अपने अंक में भर लिया। तब पार्वती देवी ने खुश होकर सहास्य उनसे कहा, "ब्रह्मा और विष्णु ने जिनको मृत समझकर परिहार किया, परन्तु तुमने उनको चिन्मयी समझकर पहचान लिया, इसलिए तुम "मृत्युंजय" हो।" ब्रह्मा का चतुरानन एवं विष्णु का एक आनन, यह मिलकर शिव तब "पंचानन" हुए।

ब्रह्मा आत्मद्रष्टा हैं। वे महत्तत्व-रूपी विष्णु के नाभिपद्म पर बैठकर सर्वत्र एक मात्र 'माँ' का ही आत्मारूप में दर्शन करते हैं। विष्णु प्राणरूप में प्रवहनशील चिन्मय आत्मा की सर्वव्यापकता की उपलब्धि करते हैं एवं शिव उस अव्यय आत्मा के पार्थिव स्थूलतनु पर्यन्त सर्वभूत महेश्वरी प्राणमयी 'माँ' का दर्शन करते है। ब्रह्मा सिर्फ आत्मा का दर्शन करते हैं, विष्णु आत्मा व प्राण का दर्शन करते हैं एवं शिव आत्मा, प्राण व देह का एकसाथ दर्शन करते हैं। इन तीनों क्षेत्रों में ही 'माँ' का दर्शन करते है इसलिए शिव "त्र्यम्बक" हैं। इस कारण देह से जहाँ प्राण एवं आत्मा का वियोग हो जाता है, समता की उस श्मशान भूमि पर भी शिव और पार्वती का प्रेमालाप चलता है। शिव के इस विशिष्टता के लिए ही अन्यान्य देवताओं के साथ उनका मेल नहीं हुआ। इस कारण, शिव देवतागणों के समाज से च्युत, स्वतंत्र, एकक, अद्वितीय और अनादि देवता हैं।"

साधक का मन जब ब्रह्मा रूप में निद्रित था तब साधक की स्थूलदेहरूपी पार्वती, उसका बोध-गंगा में बह गया था। साधक का प्राण जब विष्णु रूप में स्वप्न देख रहा था तब भी वह अपने देहरूपी पार्वती को निजबोध मध्य नहीं पकड़ सका। साधक के अन्तर का ज्ञानदेवता रूद्र जब सर्वभूतमहेश्वर शिवरूप में जागृत हुआ तब अपने देहबोधरूपी पार्वती को धारण कर लेने के बाद तब उसके स्थूलदेह चेतना की पर्याय क्रमानुसार पार्वती होती है लीलायिता-परितृप्तानन्दा-साधकनन्दिनी जननी।

साधक तुम अपने अन्तर में एकबार लक्ष्य करो, देखो, तुम्हारे बोध में कितने अचित् उदित हो रहे हैं अर्थात् तुम्हारे बोध-गंगा के पर्याय क्रम में, खंड खंड में तुम्हारी पार्वती उपेक्षिता होकर जड़वत् बहती जा रही है। तुम उनको चेतन ज्ञान द्वारा आत्मा बोध से धारण कर रखो। देखोगे - 'माँ' सजीव मूर्ति धारण कर तुम्हें गोद में उठा लेंगी।

साधक सुनो, जितने दिन तक तुम भी शिव की तरह जन्म, मृत्यु एवं जीवन व्यापी 'माँ' को निरवच्छिन्नभाव में दर्शन नहीं कर सकोगे , जितने दिन आत्मा, प्राण और देह इन तीनों क्षेत्रों में "माँ" को नहीं पहचान सकोगे उतने दिन 'माँ' की सम्यकरूप से उपलब्धि नहीं कर सकोगे। तबतक तुम सब की मातृपूजा एक काल्पनिक भक्ति की उच्छ्वास मात्र है। तब तक तुम्हारी सम्पूर्ण साधना ही शव-साधना (प्राणहीन) है। उतने दिन तुम महिषासुर बनकर रहोगे, महेश्वर नहीं हो सकोगे। तुम्हारे इस स्थूलदेह द्वारा ही तो माँ ने तुम्हें जकड़ रखा है, अन्यथा विदेह आत्मारूप में तुम न जाने किस शून्य में विलीन हुए रहते कि स्थूल जगत् में कोई तुम्हें ढूंढ नहीं पाता। माँ जैसे इस स्थूलदेह द्वारा तुम्हें धारण कर रखी है, तुम भी वैसे ही इस भुवनभरा विश्वजननी को अपने वक्ष में धारण कर रखो। तुम आत्मा, प्राण व देह को पृथक पृथक समझकर अपनी पार्थिव-जननी को इस रूप में 'माँ' मत कहो जबकि उनके सर्वस्व को एकसाथ में लेकर

ही माँ कहो, वैसे योगमायारूपी जगज्जननी को भी "माँ" कहकर पूजा करो। आत्मा, प्राण व देह का समवीय दर्शन ही सृष्टि का सौन्दर्य, माधुर्य और रूप प्रकाश है।"

उपलब्धित ध्रुवज्ञान हुआ साधक जीवन का सर्वश्रेष्ठ प्रत्यक्ष सत्य। ज्ञान ही चेतना है, चेतना ही प्राण है। प्राण-चेतना की स्पन्दित अवस्था ही मन एवं स्थिर अवस्था ही आत्मा-परमात्मा-माँ-ॐ माँ परमानन्दमयी परमब्रह्म स्वरूपिणी हैं।

हिन्दी अनुवाद :– मातृचरणाश्रित विमलानंद

नित्यसिद्ध महात्मा के दिव्यदर्शन में–श्री रामकृष्ण लीला

श्रीविष्णुपद सिद्धान्त ठाकुर

(४)

युगों-युगों से भारत के नर-नारी श्रीराम एवं श्रीकृष्ण की पूजा करते चले आ रहे हैं। समस्त सृष्टि-रहस्य इन दोनों शक्तियों द्वारा गठित है एवं परिवेशित है। अनन्त सूर्य, चन्द्र एवं नक्षत्रावली भी इन्हीं के आलोक से प्रदीप्त एवं परिव्याप्त है।

श्रीविष्णुपद सिद्धान्त ठाकुर

इन दो शक्तियों के संघर्षण के फलस्वरूप ही आदि शक्ति उद्भुत हुई (प्रकट हुई) अनन्त आकाश के साथ अनन्त व्योम के घात-प्रतिघात से, जिन सब आलोक एवं मेघ की सृष्टि द्वारा अनन्त भू-मण्डल के विच्छुरित सृष्टि के प्रारंभ से आरम्भ-योग का अनुशासन शुरु हुआ; उसी को कहते है ॐकार, जिसके उच्चारण में – रा,रा ध्वनि एवं उसी की स्थित शक्ति ध्वनि–अथवा, मम्! मम्! मम्! है। इन दोनों ध्वनियों की योगवाणी जब सृष्टिकर्ता-रूपी आदिप्रकृति या अवयवधारी के अंग से प्रतिध्वनित हो उठी, तभी उन्होंने इस ध्वनि का प्रथम उद्घोष किया– ओम्! ओम्! अर्! या मम्! मम्! रा! रा!; चोर रत्नाकर भी इसलिए इन दो आदि ध्वनियों – "मम्! मम्! रा! रा!" अर्थात् म'हरा, म'हरा, म-रा, म-रा को उच्चारित करते-करते र-म्! रा-म, के ध्वनि-प्रतिध्वनि स्वरूप "रामः! रामः रामः!" – शब्द, मंत्र-स्वरूप नियोजित करने में समर्थ हुए और तभी उन्होंने वल्मीक का आकार-प्रकार या उस आदि-प्रकृति के स्थित-शक्ति-स्वरूप का नाम या "राम" नाम लिया।

इस आदि नाम या ॐकार ध्वनि-रहस्य की प्रथम ध्वनि निसृत होने में मनुष्य के साठ हजार वर्ष जन्म अतिवाहित हुए। इसी रहस्य के रूपक तथ्य पुराण में लिखित है कि राम के जन्म के साठ वर्ष पूर्व वाल्मीकी मुनि ने रामायण की रचना की थी।

श्रीरामकृष्णदेव

रामकृष्णदेव भी एक महान् तांत्रिक पंडित के आगमन की वार्ता अन्तर-श्रुति में पाकर इस शक्ति रहस्य में ही परिवृत हो गये। किस दिन किस समय यह दाम्भिक शक्ति उन्हें तमसाछन्न करने आयेगी इसका भी उन्होंने चिन्तामणि के कौस्तुभ-मणि द्वारा दूर-दृष्टि से दर्शन किया। इसीलिए जिस समय उपस्थित भक्तवृन्दों से अलक्ष्य, वह तन्त्रधारी रावण-पंडित उनके नयन-पलकों में दृश्य हुआ था तभी रामकृष्णदेव की कंठध्वनि एक विराट रा-रा-रा ध्वनि से भर उठी। इस घटना से उनके सन्निधान में उपविष्ट भक्तगण भी चकित और विस्मित रह गये।

रामकृष्णदेव यह अतिदुर्लभ आदि ''ओम्'' ध्वनि या ॐ आकारधारी रमणीय मूर्ति या देवी प्रतिमा के दर्शन करते-करते स्वतः ही उनको ''ओम् माँ''–''ओमाँ'', ओ जगत्तारिणी ''माँ'' कहकर प्रथम सम्बोधन किया एवं, क्रमशः यह शब्द, यह ध्वनि, यह रमणीय मातृमूर्ति, प्रति जड़ एवं जीव के मध्य भी दर्शन करते-करते, भाव-विमुग्ध कण्ठ से विवेकानन्द को भी एक दिन बालतुल्य सरलता से अपार आनन्द विह्वल होकर कहने लगे – तुम निश्चय ही घट के गंगाजल में मेरी जगत्तारिणी माँ को अवश्य ही देख सकोगे – ये देखो! जल से परिपूर्ण घट की जलराशि के मध्य अवस्थित हैं – माँ जगद्धात्री। इसका क्या मतलब है, जानते हो?

समस्त घट को एक जगत् के समान मानोंगे तो? इसे